कक्षा - 12

विषय : हिन्दी (प्रथम भाषा)

माध्यम : हिन्दी

રાજ્ય સરકારના શિક્ષણ વિભાગ દ્વારા અભ્યાસક્રમમાં મંજૂર
કરવામાં આવેલ અને પાઠ્યપુસ્તકમાં સમાવેશ કરેલ

प्रकरण - 1 वैश्विक ग्रंथ - श्रीमद् भगवद् गीता
प्रकरण - 2 भारतीय शाश्वत मूल्य और गीता

तमसो मा ज्योतिर्गमय

गुजरात राज्य शाला पाठ्यपुस्तक मंडल
'विद्यायन', सेक्टर 10-ए, गांधीनगर - 382010

1 वैश्विक ग्रंथ - श्रीमद् भगवद् गीता

श्रीमद् भगवद् गीता मनुष्य और सृष्टिकर्ता के बीच सत्य-बोध का दिव्य संवाद है, जिसमें अर्जुन मनुष्य मात्र का प्रतिनिधित्व करते हैं । भगवद् गीता के माध्यम से श्रीकृष्ण परमात्मा के रूप में दिव्य मार्गदर्शन प्रदान करते हैं । कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के समय उद्घोषित यह दिव्य संवाद समस्त मानवजाति के कल्याण के मार्ग का बोधक है । गीता का ज्ञान किसी एक विशेष मानव समुदाय, किसी विशेष समय या किसी वशेष क्षेत्र के लिए नहीं है। गीता का ज्ञान सर्वकालीन और सर्वदेशीय है । समस्त मानव समुदाय को ध्येयनिष्ठ, उन्नत, निर्भय, शांतिमय, सर्जनमय, पवित्र और सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए गीता पारसमणि है । इस अर्थ में गीता वैश्विक ग्रंथ है ।

अमरीकी विद्वान हेमरी डेविड थोरो कहते हैं,'' आधुनिक जगत का ज्ञान और साहित्य गीता की तुलना में तुच्छ लगता है । मैं नित्य प्रात:काल अपने हृदय और बुद्धि को गीतारूपी पवित्र जल में स्नान करवाता हूँ । तो ईग्लेंड के प्रसिद्ध दार्शनिक अलदु हकसली कहते हैं, ''अब तक जितने भी स्पष्ट और पूर्ण शाश्वत दर्शनशास्त्र के सारांश सामने आए है, उनमें से एक गीता है। अत: यह केवल भारत ही नहीं, संपूर्ण मानवजाति के लिए शाश्वत, अमूल्य धरोहर है।'' जर्मन विद्वान डबल्यू वान हंबोल्ड गीतौ की महिमा का गुणगान करते हुए कहते है कि,''भगवद् गीता विश्व कि सबसे सुंदर और महान ज्ञान की दार्शनिक कृति है ।'' विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक आल्बर्ट आइन्स्टाइन कहते हैं कि,'' जब मैं भगवद् गीता पढ़ता हूँ और सोचता हूँ कि भगवानने इस ब्रह्मांड को कैसे बनाया । तो सब कुछ अनावश्यक लगता है ।'' महात्मा गांधीजी भी कहते हैं, ''मैं तो अपनी सभी मुसीबत की क्षणों में माता गीता के पास दौड़ा चला जाता हूँ और अब तक आश्वासन प्राप्त करता रहता हूँ ।'' हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलामजी कहते हैं, गीता मानवमात्र के लिए शाश्वत प्रेरणा का स्रोत है । गीता का अध्ययन करने से मेरी समस्याएँ हल हो जाती हैं ।

इस प्रकार विश्वमांगल्य भावना से ओत-प्रोत भारतीय संस्कृति का अमूल्य वरदान है'' श्रीमद् भगवद् गीता ए!'' इस सद्ग्रंथ की विशेषता यह है कि यह बहुत कुछ कम में बहुत कुछ कह जाती है, यह गुणमयी गीता जीवन की बुद्धि रूपी गागर में आनंद, शांति और प्रेम का अगाध सागर भर देती है । अत्यंत दुर्लभ एवं गूढ वेदांत ज्ञान को इस सद्ग्रंथ ने जन - जन के लिए सरल और सुलभ भाषा में उपलब्ध करवाया है, वह है **वासुदेव: सर्वम् इति ॥ (गीता 7.19)**

वासं करोति इति वासुदेव: अर्थात् जो सभी में निवास करते हैं वे वासुदेव ! भले ही संसार में सबकुछ अलग - अलग है फिर भी तत्त्वरूप से एक चैतन्य सत्ता अर्थात् परमात्मा ही है । परमात्मा एक होने पर भी वह अनेक रूपों में दिखाई दे रहा है । जिस तरह गुब्बारों की आकृतियाँ और रंग भले ही अलग हों, फिर भी उनमें हवा एक ही है । ठीक इसी तरह हम सबमें एक ही परमात्मा तत्त्व अलग - अलग रूप में खिल रहा है ।

इस भाव को आत्मसात् कर लेने मात्र से हमारा जीवन - व्यवहार कल्याणकारी, मंगलकारी बन जाता है तथा हम उद्यमी, उपयोगी और सहयोगी बनकर सबके प्रियपात्र बन जाते हैं । इस प्रकार मनुष्य अपने आप में स्वयं ही तृप्त होकर जीवन सफलता को प्राप्त कर लेता है ।

गीता में भगवान शब्द बार – बार आता है । तो भगवान शब्द का अर्थ क्या है ?

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।

वैरागस्य च मोक्षस्य षण्णां भग इतीरितः ॥ (विष्णुपुराणम् 6.5.74)

(अर्थात् जो ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, मोक्ष और वैराग्य से युक्त है, उसे भगवान कहा जाता है ।) इसी बात को भगवद् गीता में सात्त्विक ढंग से समझाते हुए कहा गया है कि **यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।(गीता 6.30)** अर्थात् जो मनुष्य प्राणियों में मुझे ही देखता है और मुझमें सब कुछ देखता है, उसका नाश नहीं होता । विभिन्न जातियाँ, मत, पंथ, संप्रदाय उन्हें विभिन्न नाम से संबोधित करते हैं और अपने तरीके से उनकी पूजा करते हैं लेकिन वह चैतन्य एक ही है ।

भगवद् गीता ग्रंथ किसी भी धर्म, जाति, मत, पंथ, संप्रदाय तक सीमित नहीं है, परंतु सभी जीवों के लिए है । गीता का उपदेश पाने के लिए किसी विशेष अधिकारित्व की आवश्यकता नहीं है । यह बात भगवान ने स्वयं कही हैं ।

अपि चैत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः (गीता 9.30)

(अर्थात् यदि कोई अत्यंत दुराचारी मनुष्य भी अनन्य भाव से मेरा निरंतर स्मरण करता है तो वह निश्चित रूप से साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह संपूर्ण रुप से मेरी भक्ति में ही स्थित है । श्रीकृष्ण आगे भी कहते हैं कि –

क्षिप्र भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।(गीता 9.31)

(अर्थात् जो मनुष्य शीघ्र धर्मात्मा हो जाता है और निरंतर रहनेवाली परम शांति को प्राप्त करता है ।)

गीता समस्त प्राणियों की समस्त समस्याओं का समाधान एवं सांत्वना देनेवाला ग्रंथ है । आबाल बृद्ध, साक्षर – निरक्षर हर किसी को गीता सुखमय जीवन मार्ग खोजने के लिए प्रेरित करती है ।

स्वयं में और दूसरों में वह एक ही परमात्मतत्त्व व्याप्त हैं । इस सत्यता का स्मरण करके एक – दूसरे के लिए सद्भाव रखकर सक्रिय उन्नति करने के लिए गीता कहती हैं –

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ (गीता ३.११)

(अर्थात् एक दूसरे की उन्नति करते हुए तुम लोग परम कल्याण प्राप्त करोगे ।)

इस संसार में प्राचीनकाल से ही दैवी और आसुरी संपत्ति के बीच संघर्ष चला आ रहा है । विश्व का प्रत्येक मनुष्य दैवी और आसुरी गुणों का मिश्रण है । गीता में श्रीकृष्ण ने दैवी और आसुरी गुणों का वर्णन किया है । आसुरी परिबलों से मुक्त होना और अपने अंदर दैवी तत्त्वों का विकास करना ही मानवजीवन को उन्नत बनाने का साधन है ।

इसे सिद्ध करने के लिए मनुष्य निरंतर संघर्षरत रहता है । गीता मनुष्य को हताशा, निराशा, क्रोध, ईर्ष्या आदि आसुरी गुणों को त्यागने को कहती है । गीता तो प्रत्येक मनुष्य को दैवी संपत्तियों का अधिकारी मानती है । श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है कि, **ना शुचः संपदम् दैवीम्** अभिजातोऽसि पाण्डव । (16.5) अर्थात् हे अर्जुन ! तुम शोक मत करो, तुम दैवी गुणों से उत्पन्न हुए हो । अर्जुन गीता में मनुष्यमात्र का प्रतिनिधि होने से यह विचार संपूर्ण विश्व की मानवजाति के लिए है । यह विचार अर्जुन के माध्यम से संपूर्ण विश्व के मानव को स्पर्श करता हैं, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य को अपने अंदर दैवी संपत्ति के गुणों का विकास करना होगा । गीता का **सारतत्त्व मा शुचः है ।** गीता में श्रीकृष्ण का उपदेश **अशोच्यातत्त्वम् (गीता 2.11)** से शुरु होकर **मा शुचः (गीता 18.66)** पर ही पूर्ण होता है । इस तरह समस्त गीता का सार

यह है कि किसी भी स्थिति में दु:खी नहीं होना, शोक नहीं मनाना है । इसी संदर्भ में श्रीकृष्ण ने कहा है कि **तत्र का परिदेवना (गीता 2.88)** यानी इसमें विलाप (दु:ख) किसलिए करें ?।

गीता किसी भी मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए एक सुलभ ग्रंथ है, कारण कि यह समन्वयवादी विचार धाराओं को प्रस्तुत करता है । गीता का आदर्श है कि मनुष्य का समग्र और संतुलित विकास होना चाहिए । विचार, क्रिया और भावना मानव स्वभाव के अंश हैं । इनमें से किसी एक की भी कमी मनुष्य के व्यक्तित्त्व और उसके विकास की कमी मानी जाती है । गीता कहती हैं कि मनुष्य के स्वभाव में इन तीनों में से किसी एक की भी अधिकता हो सकती है । इसलिए ज्ञान, कर्म और भक्ति में से किसी एक गुण की अधिकतावाले को क्रमश: ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग नाम दिया गया है । तीनों एक दूसरे के पूरक हैं । मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए तीनों का समन्वय आवश्यक है ।

विश्व के किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्त्व को दैवी गुणों से युक्त बनाने के लिए गीता सर्वांगीण विकास करने के लिए सहायक हो सकती है । इसीलिए श्री अरविंद घोष के अनुसार गीता 'समन्वय का ग्रंथ हैं । इसके समन्वय का उद्देश्य मानवता का उत्थान है ।

गीता सबको मार्गदर्शन देती हैं कि भूतकाल का शोक किए बिना, भविष्य की व्यर्थ की चिंता किए बिना वर्तमान का मूल्य समझकर कर्तव्य करना चाहिए । सहज कर्म कौन्तेय सदोषमपि नत्यजेत । (गीता 18.48) अर्थात् दोषयुक्त हो तो भी सहजकर्म छोड़े नहीं । क्योंकि स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानव: (गीता 18.46) अर्थात् स्वाभाविक कर्तव्य कर्म का आचरण करने से मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त करता है । इसीलिए लोकमान्य तिलक गीता को कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार करनेवाला नीतिशास्त्र कहते हैं ।

गीता पढ़नेवाले विद्यार्थी या व्यक्ति में निर्भयता, सात्विकता, संयम, सदाचार, परोपकार, अंत:करण की पूर्ण निर्मलता और अनेकता में ेकता की वृत्ति जैसे सद्गुणों की वृद्धि होती है ।

गीताकार निष्पक्ष हैं । वे निराग्रही हैं और मनुष्य को भी कितना स्वतंत्र बनाना चाहते हैं, इसका पता गीता के अंतिम अध्याय के समापन में चलता है । गीता का उपदेश देने के बाद श्रीकृष्णने अंत में अर्जुन से कहा -

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्यादगुह्यातरं मया ।

विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु । (गीता 18.63)

(अर्थात् इस प्रकार यह गुह्य से भी गुह्य ज्ञान मैंने तुमसे कह दिया । अब तुम इस रहस्यमय ज्ञान को संपूर्ण रूप से विचार कर, जैसी इच्छा हो वैसा करो ।)

देखो गीता कहाँ प्रकट हुई है ! गीता युद्ध के मैदान में प्रकट हुई है । जो हताश योद्धा अर्जुन को जीवन का उद्देश्य और कर्तव्य समझाती है ।

गीता के प्रकट होने का उद्देश्य युद्ध नहीं था । इसका उद्देश्य सत्य के पक्ष में रहे व्यापक जनसमाज को सुख, शांति और मुक्तिदायक जीवन की समझ देना था । यहाँ युद्ध के लिए दोनों पक्षों के उद्देश्य अलग-अलग थे । दुर्योधन कहता है, '' ये सभी योद्धा मेरे लिए प्राण देने के लिए तैयार है ।'' अर्थात् दुर्योधन राजसत्ता पाना चाहता था ।

न काङंक्षे विजयं कृष्ण न च राज्य सुखानि च ।

किं जो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥ (गीता 1.32)

(अर्जुन कहते हैं ।) हे कृष्ण ! मैं न विजय – चाहता हूँ, न राज्य चाहता हूँ, न सुख चाहता हूँ । जिनके लिए मैं राज्य चाहता हूँ, वे ही रणभूमि में मेरे सामने खड़े हैं । अत: राज्य पाकर मैं क्या करूँगा । हे गोविंद ! ऐसे राज्य का क्या फायदा । या ऐसे भोग और जीवन से भी क्या लाभ !

इस प्रकार, अर्जुन के जीवन में जनकल्याण का उद्देश्य दिखता है और दुर्योधन के जीवन में सत्ता की लालसा ।

जो गीता के ज्ञान को आत्मसात् करता हैं, गीता उसकी हताशा, निराशा को दूर कर देती है । कर्तव्य कर्म के मैदान में आए अर्जुन भागने की तैयारी करते हैं, वे कहते हैं, भिक्षा माँग लूँगा लेकिन यह युद्ध नहीं लड़ूँगा ।'' ऐसा सोचने वाले अर्जुन गीता का ज्ञान सुनने के पश्चात् कहते हैं –

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।

स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव ॥ (गीता 18.73)

(अर्थात् हे अच्युत ! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हो गई है । अब, मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ; इसलिए मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।)

ऐसी कोई सत्प्रेरणा और ज्ञान नहीं है जो गीता में न हो । ऐसी कोई वैश्विक समस्या नहीं, जिसका समाधान गीता से न मिल सके। केवल मनुष्य के पास देखने की द्रष्टि होनी चाहिए ।

गीता को वैश्विक ग्रंथ माना जाता है क्योंकि यह वैश्विक मनुष्य के कल्याणकारी विचारों से समृद्ध है । यह सर्वविदित है कि विश्व के कोने-कोने विभिन्न देशों और धर्मों के दार्शनिकों, महापुरुषों और विद्वानो ने गीता का आदर करते हुए खूब प्रशंसा की है । भारत देश का यह सौभाग्य है कि इस भूमि पर श्रीगीता जैसा वैश्विक कल्याणकारी ग्रंथ प्रकट हुआ है और यह भारतीय संस्कृति का शाश्वत गौरव बना रहेगा ।

गीता मनुष्य को आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक त्रिविध दु:खों से मुक्ति दिलाने वाला ग्रंथ है । गांधीजी ने भी गीता को 'आध्यात्मिक निदान ग्रंथ' कहकर उसका महान मूल्य स्थापित किया है ।

शब्दार्थ

गागर घड़ा **ब्रह्मनिष्ठ** ब्रह्मा के ध्यान में लीन, ब्रह्मज्ञ **सदगुरु** सच्चा, अच्छा, ज्ञान देनेवाला **उद्योगी** मेहनती **आत्मज्ञान** स्वयं का ज्ञान, आध्यात्मज्ञान, आत्मा का साक्षात्कार **तत्त्वज्ञान** जीव-जगत और ईश्वर से संबंधित तीनों तत्त्वों का ज्ञान, दर्शनशास्त्र **शीघ्र** त्वरित, जल्दी, तेज **धर्मात्मा** धर्मनिष्ठ व्यक्ति **पतित** गिरा हुआ, पापी **हितैषी** हित, कल्याण, श्रेय चाहनेवाला, लाभ, फायदा **अनभिज्ञ** अनजान, मूढ़ **चैतन्य** चेतना, समझ, ज्ञान, आत्मा, बल, पराक्रम **भरणपोषण** गुजारा, निर्वाह **गमनागमन** आना – आना (यहाँ जन्म मृत्यु) **समदर्शी** समान नजर से देखनेवाला, निष्पक्ष **तकनीकी** टेक्नोलोजी **गुह्य** छिपा हुआ, छुपाने योग्य, रहस्य, मर्म

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए :

1. सबमें प्रिय बनने के लिए गीता क्या सिद्धांत बताती है ?
2. परम शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है ?

3. किस प्रकार के मनुष्य अत्यंत दुर्लभ हैं ?

4. गीता में हमें कौन-कौन से गुण मिलतें हैं ?

5. समस्त जीवों का सनातन बीज कौन है ?

6. कौन से महापुरुष अत्यंत दुर्लभ हैं ?

7. जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है ?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में दीजिए :

1. ''ईश्वर एक ही है'' ऐसा क्यों कहा जा सकता है।

2. 'भगवान' शब्द के चारों वर्ण का क्या अर्थ किया गया है?

3. गीता में युद्ध के दोनों पक्ष क्या उद्देश्य देखते हैं?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तृत उत्तर दीजिए :

1. ''ईश्वर एक ही है और सर्वव्यापी है'' निबंध के आधार पर स्पष्ट करें ।

2. गीता के वैचारिक सिद्धांतों को अपने शब्दों में लिखिए ।

3. ज्ञानी महात्माओं से तत्त्वज्ञान का उपदेश कैसे प्राप्त करें ?

4. गीता पढ़नेवाले लोग कौन से सद्गुणों को आत्मसात् करते हैं ?

विद्यार्थी - प्रवृत्ति

- 'कृष्ण अने मानवसंबंधो' लेखक: हरीन्द्र दवे, 'कृष्णावतार' लेखक : कनैयालाल मुंशी की पुस्तकों को पढ़ना (दोनों पुस्तक मूलत: गुजराती भाषा की हैं) ।
- You Tube, Google पर से गीता चिंतन, प्रवचन सुनना ।
- आसपास होनेवाली भगवद् कथा में सहभागी बनना ।
- गीता आधारित सूत्रमाला तैयार करना, जिसे Facebook, Status, Whats App आदि पर रखकर प्रचार - प्रसार करना ।
- गीता के सिद्धांतों का प्रत्यक्ष कार्यान्वयन करना ।
- 'गीताज्ञान: आत्मा की औषधि' विषय पर निबंध तैयार करना ।

शिक्षक की भूमिका

- प्रार्थनासभा में गीता प्रवचन आयोजित करना ।
- गीता आधारित प्रश्नमंच, सूत्रलेखन, वक्तृत्व आदि प्रतियोगिताओं का आयोजन करना ।
- विविध सेवा प्रकल्पों में विद्यार्थियों को शामिल करना ।
- गीता विषयक विचार गोष्ठी का आयोजन करना ।
- 'गीता सिद्धांतों का सारदर्शन' प्रोजेक्ट तैयार करवाना ।

●●●

2 भारतीय शाश्वत मूल्य और गीता

भारत प्राचीनतम राष्ट्र है । सुसंस्कृति, ज्ञान, समृद्धि, शांति, सौहार्द,, एकात्मता, खोज, समर्पण आदि हमारे मानक मूल्य हैं । भारत मूल्यवान और रचनात्मक सामग्री के भंडार से भरपूर है । इसे अनेक प्राचीन – अर्वाचीन महापुरुषों ने स्वीकार किया है । मार्क ट्वेन ने लिखा है, 'भारतभूमि उपासना पंथों की धात्री, मानवजाति की पालक, भाषाओं की जन्मभूमि, इतिहास की माता, पुराणों की दादी और परंपरा की परदादी हैं ।'

किसी भी देश का साहित्य उसके समाज का प्रतिबिंब होता है । किसी भी देश के अतीत से लेकर वर्तमान तक का परिचय साहित्य के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है । भारतीय संस्कृति के दो महान आर्ष महाकाव्य रामायण और महाभारत की दिव्यगाथा मानवजाति के हृदय में चिरस्थायी है । स्वयं वेदव्यास लिखते हैं, **यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् कवचित् । (62.53)** यानी जो यहाँ (महाभारत में) है वह संसार में किसी न किसी जगह मिलेगा, जो यहाँ नहीं वह बात संसार में कहीं नहीं है । आज भी यह ग्रंथ प्रत्येक भारतीय के लिए अनुकरणीय है । इस महाभारत ग्रंथ में ही विश्व के लिए मार्गदर्शक भगवद् गीता है । आइए, कुछ मुद्दों पर विचार करें

(1) ज्ञान प्रणाली (परिप्रेश्नेन सेवया । 4.34)

भारतीय सनातन परंपरा में 'जिज्ञासा का समाधान' आदर्श ज्ञानप्रणाली रही है । भगवान बादरायण ने ''ब्रह्मजिज्ञासा'' से ब्रह्मसूत्र की शुरुआत की । 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' भारतीय संस्कृति केवल उपदेशों पर आधारित नहीं है । व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर जीवन में आने वाली समस्याओं और जिज्ञासाओं को प्रबुद्ध व्यक्तियों 'महापुरुषो' के सामने उचित तरीके से प्रस्तुत करना और समाधान प्राप्त करना हमारी प्राचीन परंपरा रही है ।

अर्जुन के कर्तव्य से उत्पन्न समस्यों और उनके समाधान स्वरूप गीता अट्ठारह अध्याय में फैली हुई है ।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रेश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ने ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ (गीता 4.34)

(अर्थात् उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ, उन्हें भलीर्भाति दंडवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्मा तत्त्व को भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश देंगे ।)

प्रश्नोत्तर ज्ञान परंपरा की एक श्रेष्ठ पद्धति है । यहाँ प्रश्नोकर्ता में जिज्ञासु होने की योग्यता अपेक्षित है । यहाँ स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विकपूर्वक गुरु की सेवा करके, प्रसन्नभाव से प्रश्न पूछने से ज्ञान प्राप्त होता है ।

गीता में इस तरह अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण की शरणागति स्वीकार कर ली है ।

यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे ।

शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ (गीता २.०७)

(अर्थात् जो साधन निश्चित रूप से कल्याणकारक हो, वह मेरे लिए कहिए क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिए आपके शरण आए मुझको उपदेश दीजिए ।)

अपनी यह 'गुरुशिष्य' की अद्‌भुत भारतीय परंपरा रही है । यह एक ऐसा रिश्ता है कि जिसमें नि:स्वार्थ, नि:शंक और निर्मल हृदय से ज्ञानप्राप्ति की साधना है । **गुरुः साक्षात् परब्रह्म** । इसीलिए तो गुरु को साक्षात् परब्रह्म कहा जाता है ।

इतिहास गवाह है कि महान विभूतियों ने भी गुरु की शरण में जाकर ज्ञान प्राप्त किया । श्रीराम ने गुरु विश्वामित्र और श्रीकृष्ण ने गुरु सांदीपनि के सानिध्य में रहकर ज्ञान प्राप्त किया था । शबरी के गुरु मतंग ऋषि और मीरांबाई के गुरु संत रैदास थे ।

इस गुरु शिष्य परंपरा में शिष्य गुरु के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु बनकर विनयपूर्वक गुरु की शरण में जाता है । इस तरह शरण में आए शिष्य को गुरु ज्ञान प्रदान करता है । इस परंपरा के अनुसार शिक्षक को सम्मान देना तथा उनके निर्दिष्ट कथनों का आदरपूर्वक पालन करना सेवा भाव का एक रुप है ।

(2) ईश्वर की सर्वव्यापकता (वासुदेवः सर्वम् इति । गीता 7.19)

'वासुदेव सर्वत्र हैं ।' अर्थात् ये सब ईश्वरमय है । **ईशावास्यमिदं सर्वम्** । सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास है । सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और विसर्जन का कारण ईश्वर ही है । सभी शास्त्र भी यही बताते हैं । छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है कि **सर्वं खल्विदं ब्रह्म** –''यह सब ईश्वरमय है ।'' **(छान्दोग्य उपनिषद् 3.14.1)**

यहाँ ईश्वर की सर्वव्यापकता सिद्ध होती है । **दिव्यमादिदेवमर्ज विभुम् ॥ गीता 10.12** देवों के भी आदि देव अजन्मा और सर्वव्यापी हैं । श्रीमद् भगवद् गीता के नवें अध्याय के 16 से 18 श्लोक में सृष्टि का जनक, पोषक और संहारक ईश्वर ही है, इसका वर्णन है ।

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
म तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ (गीता 10.39)

(अर्थात् जो समस्त भूतों की उत्पत्ति का कारण है, वह भी मैं ही हूँ, क्योंकि मेरे बिना कोई भी चल या अचल प्राणी नहीं है ।

सृष्टि के कण-कण में ईश्वर का वास है । यह भगवद् भाव जीवन को सार्थक करने का मार्ग दिखाता है । मुझमें, आपमें, हमारे आसपास के सभी लोगों में और सभी जीवों में ईश्वरतत्त्व प्रवाहित हो रहा है । इस सत्य को ध्यान में रखकर सबके साथ शिष्टाचारपूर्वक व्यवहार करना चाहिए ।

(3) जीव ईश्वर का अंश (ममैवांशो जीवलोके । गीता 15.7)

प्रत्येक देह में रहा जीव ईश्वर का ही अंश है और यदि प्रत्येक जीव उनका ही अंश है तो हम सबमें एक समान परमात्मा विद्यमान है । **परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ गीता 13.23** (अर्थात् इस शरीर में होने पर भी जीवात्मा वास्तव में परमात्मा ही है ।) शरीर में जीवात्मा के रूप में साक्षात् अंशस्वरूप परमात्मा विराजमान है । **(ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः । गीता 15.07)** इस देह में स्थित सनातन जीवात्मा मेरा ही अंश है ।

इस देह को देवालय (मंदिर) कहा जाता है । जहाँ साक्षात् परमात्मा विराजमान हो उस मंदिर रूपी शरीर को कितना शुद्ध और पवित्र रखना हमारे हाथ में है । देह की आंतरिक और बाह्य शुद्धि के लिए शुद्ध आहार, प्राकृतिक विहार, पवित्र विचार, सत्य वाणी और प्रामाणिक आचरण अपनाना चाहिए ।

यदि हम जीव में ईश्वर के अंश को हृदय से स्वीकार कर लें तो हम सभी में प्रेम, सदभाव, करुणा, मित्रता, अहिंसा आदि गुण स्वाभाविक रूप से विकसित हो जाएँगे । हमारे अंदर रहा यह भाव छोटे-बडे का भेद मिटाकर समानता का एहसास कराता है । इस प्रकार, नर में नारायण का दर्शन करानेवाली हमारी संस्कृति महान है ।

(4) आत्मा की अमरता (शाश्वतोऽयं पुराणो । गीता 2.20)

वैदिक परंपरा में आत्मा की अमरता सिद्ध है । यह देह नश्वर है । जब कि आत्मा नित्य और शाश्वत है । हम सभी एक ही परमात्मा के अंश हैं । शरीर अनित्य और आत्मा नित्य हैं ।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं, भूखा भविता ना न भूयः ।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ (गीता 2.20)

(अर्थात् यह आत्मा किसी भी काल में जन्म नहीं लेती, मरती नहीं तथा जन्म लेकर पुनः सत्तावान नहीं होती, कारण कि वह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है । शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नहीं मरती ।)

गीता में भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार आत्मा अमर है और देह नाशवान है । इससे हमें यह सीखना होगा कि यह, शरीर और इसकी अवस्थाएँ निरंतर बदलती रहती हैं । इस परिवर्तनशील चक्र में आत्मा ही एकमात्र अपरिवर्तनीय तत्त्व है, जो साक्षी भाव से स्थित है । जन्म से लेकर मृत्यु तक, सुबह से लेकर रात तक शरीर, मन, विचार और प्रकृति सब कुछ परिवर्तित होता रहता है । इस बदलती परिस्थिति को देखनेवाली अपरिवर्तनशील आत्मा ही है ।

(5) अवतारवाद (सम्भवामि युगे युगे । गीता 4.8)

ईश्वर स्वयं धरती पर कब और किसलिए अवतार धारण करता है तो उसका वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् । (गीता 4.7)

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ (गीता 4.8)

(अर्थात् हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं अपना रूप धारण करता हूँ यानी साकार रूप से लोगों के सामने प्रकट होता हूँ । साधुपुरुषों का उद्धार करने, पापियों का नाश करने और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग - युग में प्रगट होता हूँ ।)

पुराणों में भगवान विष्णु के दशावतारों जैसे मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि का वर्णन है । ईश्वर के ये अवतार सज्जनों की रक्षा और धर्म की स्थापना के लिए हुआ है । इस दशावतार से यह समझा जा सकता है कि जब जैसी समस्या तब वैसा स्वरूप धारण करके ईश्वरने संसार के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया है ।

सज्जनों के सद्कार्यों में ईश्वर हमेशा साथ रहते हैं। जब हम सत्कर्ममय बन जाते हैं तब ईश्वर सहायक बनकर हमारी मदद के लिए आते हैं और सर्वशक्तिमान दिव्य शक्ति नया ही स्वरूप लेकर सत्कर्मियों की सहायता करने के लिए निमित्त बनकर आ जाते हैं ।

जीवन में विपरीत परिस्थितियों या संकट के समय हमें हताश या निराश नहीं होना चाहिए । सर्वशक्तिमान ईश्वर हमारा अदृश्य सहारा है । हृदयपूर्वक प्रार्थना करने से ईश्वर सद्कार्य करने वाले की किसी न किसी स्वरूप में सहायता करते हैं । ऐसी श्रद्धा और आश्वासन को हृदय में जीवित रखें ।

(6) समत्वभाव (समत्वं योग उच्यते । गीता 2.48)

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूखा समत्वं योग उच्यते ॥ (गीता 2.48)

(अर्थात् तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर, समत्व ही योग कहलाता है ।)

समत्व गीताकार भगवान श्रीकृष्ण का प्रिय शब्द और भाव है – समत्वभाव । यह व्यक्ति की एक उन्नत अवस्था का ही परिणाम है । इस अवस्था को प्राप्त करने बाद सुख–दुःख, मान–अपमान, सफलता–निष्फलता आदि के बीच का भेद मिट जाता है । गीताकार ने इसे योग कहा है । इस भाव को आत्मसात करना अनिवार्य है, क्योंकि यह आदर्श और सुखी जीवन का राजमार्ग है । इस अवस्था में पहुँचने के बाद व्यक्ति की सभी एषणाएँ (अभिलाषाएँ) शांत हो जाती हैं और परम शांति की अनुभूति होती है ।

यदि हम समभाव विकसित करें तो निष्फलता भी हमें दुःख नहीं पहुँचा सकती है । यदि कोई व्यक्ति हमें चिढ़ाता है तो इसका कोई असर हमारे मन पर नहीं होता है । किसी से भी हमें मान–सम्मान की सहज भी अपेक्षा नहीं होती है । यह समत्वभाव हमारे उद्वेगों के खिलाफ कवच का कार्य करता है ।

(7) समावेशी भाव (मम तेजोंऽशसम्भवम् । गीता 0.41)

संसार की सभी ऐश्वर्ययुक्त, कांतियुक्त और शक्तियुक्त वस्तुएँ ईश्वर के तेज के अंश में से उत्पन्न हुई हैं । भारतीय संस्कृति में ईश्वर के विविध स्वरूपों की आराधना को स्वीकार किया गया है। पद्धति या प्रक्रिया कोई भी हो, ईश्वर को जिस रूप में भजते हैं, उसे उसी स्वरूप में प्राप्त किया जा सकता है । भारतीय सतानत परंपरा में इष्टदेव और पूजन पद्धति के चयन में स्वतंत्रता है ।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धा तामेव विद्धाम्यहम् ॥ (गीता 7.21)

(अर्थात् जो–जो सकाम भक्त जिस–जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, उस–उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ ।)

भारतीय संस्कृति में किसी निश्चित पूजा पद्धति के लिए बंधन नहीं है । यह समावेशी भाव ही हमारी संस्कृति की विशिष्ट लाक्षणिकता है ।

जो व्यक्ति जैसी श्रद्धा के साथ जिस देवता की पूजा करता है, भगवान उस व्यक्ति की श्रद्धा को उस देवता के प्रति मजबूत कर देते हैं । इस प्रकार भगवान की समावेशी भावना को गीता में अत्यंत दृढ़ता से और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है ।

(8) कर्तव्यबोध (श्रेयान स्वधर्मो विगुणः । गीता 3.35)

पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः । (गीता 2.7)

(धर्म के विषय में मोहचित्त मैं (अर्जुन) आप से पूछता हूँ ।)

अर्जुन अपने स्वधर्म (कर्तव्य) से विचलित हो गया है । अतः अर्जुन को निमित्त बनाकर हम सबको गीता ने **स्वधर्मे निधनं श्रेयः (गीता 3.35)** 'स्वधर्म ही श्रेयस्कर है,' ऐसा संदेश दिया है ।

स्वधर्म के पालन में कई बार हतोत्साहित हो जाना होता है । अतः गीता कहती है, 'जीवन रोने के लिए नहीं है, भागने के लिए नहीं है, जीवन हँसने के लिए है, खेलने के लिए है, मुसीबतों का हिम्मत से सामना करने के लिए है, साथ ही अटूट आशा और अखंड श्रद्धा के बल पर विकास करने के लिए है ।'

इस प्रकार गीताजी मानवमात्र को जीवन में प्रतिक्षण आनेवाले छोटे-बड़े संग्रामों के सामने हिम्मत से संघर्ष करने की शक्ति देती है । अत: श्रीमद् भगवद् गीता किसी एक पंथ विशेष का न होकर वैश्विक ग्रंथ की भूमिका का निर्वाह करती है । Gita is not the Bible of Hindusim but it is the Bible of Humanity.

स्वाध्याय

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में लिखिए :

1. ज्ञानप्राप्ति के लिए एक शिष्य में कौन से गुण आवश्यक हैं ?
2. अध्याय 2 के श्लोक 7 में अर्जुन की क्या माँग है?
3. आत्मा की अमरता के बारे में आप क्या समझते हैं ?
4. गीता के अंत में अर्जुन की स्थिति और निश्चय कैसा है?

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से लिखिए :

1. ईश्वर की सर्वव्यापकता को समझने के बाद मनुष्य के व्यवहार में क्या-क्या परिवर्तन होते हैं? इसका समग्र सृष्टि पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
2. सत्कार्य करनेवालों के लिए अवतारवाद किस प्रकार भरोसा देनेवाला है ?
3. गीता के प्रति अपना भाव अपने शब्दों में लिखिए ।

3. विस्तृत टिप्पणी लिखिए :

1. गीता के शाश्वत मूल्यों की वर्तमान समय में आवश्यकता ।
2. ईश्वर के अवतारवाद का अपने शब्दों में वर्णन करें ।
3. भारतीय ज्ञान प्रणाली को अपने शब्दों में समझाइए ।
4. गीता का स्वधर्म (कर्तव्यबोध) समझाइए ।

विद्यार्थी - प्रवृत्ति

- इस पाठ में वर्णित शाश्वत मूल्यों जैसे अन्य मूल्यों को गीता में से खोजकर प्रार्थनासभा में प्रस्तुत करना ।
- पाठ में आए शाश्वत मूल्यों का सार अपने शब्दों में तैयार करके माता-पिता के साथ चर्चा करना ।

शिक्षक की भूमिका

- गीता जयंती और गीतासप्ताह मनाना ।
- गीता के शाश्वत मूल्यों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता पर चर्चा सभा का आयोजन करना ।
- गीता के मूल्यों को जीवन में कैसे लाया जा सकता है इसकी प्रसंगोपात चर्चा करना ।

●●●

नोंध

नोंध

नोंध

नोंध